ISSN - 2348-2397
APPROVED UGC CARE

SHODH SARITA

SHODH SARITA
Vol. 7, Issue 25, January-March, 2020
Page Nos. 159-162

AN INTERNATIONAL BILINGUAL PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

# अरविंद-दर्शन में 'रूपांतरण' एवं 'अतिमानस' की अवधारणा

❐ डॉ0 अनिल राय*

## शोध सारांश

आधुनिक भारत के मनीषियों में श्री अरविंद का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उनके चिंतन के मूल आधार भारतीय वेद और उपनिषद हैं। अरविंद की दृष्टि में अध्यात्म वह नहीं है जो मनुष्य को जीवन से पलायन और संन्यास की शिक्षा देता है, बल्कि उनके द्वारा निर्दिष्ट अध्यात्म में कर्मयोग को मोक्ष का मूल मंत्र कहा गया है। वे एक महायोगी थे अतः उन्होंने योग एवं साधना को अपने चिंतन के केंद्र में स्थापित किया। अरविंद ने शंकराचार्य के 'जगत मिथ्या' और 'मायावाद' के सिद्धांत को अस्वीकार करते हुए कहा कि जो छिपा हुआ है वही प्रकट होता है। अर्थात् द्रव्य में चैतन्य पहले से विद्यमान था अतः द्रव्य से जीवन और जीवन से मन प्रकट हुआ। अरविंद की दृष्टि में जगत के विकास के समानांतर मनुष्य के मन की भी विकास–यात्रा चल रही है जिसे वे 'रूपांतरण' का नाम देते हैं। रूपांतरण की प्रक्रिया में पदार्थ से जीवन एवं जीवन से मन की उत्पत्ति अब तक हो चुकी है। इसका अंतिम सोपान अतिमानस का है। उन्होंने अपने दर्शन में चैत्तिक, आध्यात्मिक और अतिमानसिक रूपांतरण का विश्लेशण करते हुए विकासवाद की नयी आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की है।

**Keywords :** अध्यात्म, योग, विकासवाद, आत्मवाद, पदार्थवाद, रूपांतरण, अवरोहण, आरोहण, अतिमानस।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और दर्शन के इतिहास में अरविंद घोष का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। एक क्रांतिकारी योद्धा से अध्यात्मपुरुष तक की उनकी यात्रा उन्हें भारतीय नवजागरण के एक महानतम् व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित करती है। कोलकाता में 15 अगस्त 1872 को अरविंद का जन्म हुआ और जब वे महज 7 वर्ष के थे, इनके पिता श्री कृष्णधन घोष सपरिवार इंग्लैंड चले गये। अरविंद के बाल्यकाल में यूरोप अपनी बौद्धिक–वैज्ञानिक सभ्यता के शिखर पर था। उनके पिता पश्चिमी सभ्यता की इस चकाचौंध के जितने बड़े प्रशंसक थे, भारतीय सभ्यता के उतने ही प्रबल विरोधी। इसका परिणाम यह हुआ कि पिता द्वारा अरविंद को भारतीय संस्कारों से काफी दूर रखा गया और उनका पालन–पोषण तथा शिक्षा–दीक्षा यूरोपीय शैली में हुई। वे अपने जीवन के किशोरवय तक पूर्णतः नास्तिक रहे। यह किसी चमत्कार से कम नहीं लगता कि ऐसा व्यक्ति आगे चलकर विश्व का एक महान अध्यात्मपुरुष बना। अरविंद केवल दार्शनिक, साहित्यकार और चिंतक ही नहीं थे, बल्कि वे आध्यात्मिक विकास के अग्रदूत, एक महायोगी और युगावतार पुरुष थे। भारतीय दर्शन के धरातल पर श्री अरविंद के अवतरण को एक बड़ी घटना मानते हुए टैगोर ने लिखा है–''.. आग्नेय संदेशवाहक जो दिव्य प्रदीप लेकर आया है.....मुझे आशा के अमर वैभव से प्रतिध्वनित आत्मा का महान और उल्लासपूर्ण गीत सुनायी पड़ा।''[1]

अरविंद वैयक्तिक मुक्ति के नहीं अपितु समस्त मानव जाति की मुक्ति के आकांक्षी थे। कार्ल मार्क्स भी वैयक्तिक मुक्ति के विरोधी थे। जबकि गाँधी का मानना था कि वैयक्तिक मुक्ति के द्वारा ही सामाजिक मुक्ति संभव हो सकती है। प्रसिद्ध साहित्यकार दिनकर ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है– ''धर्म के प्रचलित रूपों से आजिज आकर मार्क्स ने कहा था कि वैयक्तिक मोक्ष खोजने का ध्येय गलत ध्येय है। मोक्ष असल में समाज का होना चाहिए और समाज के मोक्ष का अर्थ मार्क्स समाज का अधिभौतिक मोक्ष समझते थे। जब गाँधी आये तो उन्होंने मार्क्स में कुछ संशोधन कर दिया और यह कहा कि मोक्ष तो हमेशा व्यक्ति का ही होता है, किंतु वैयक्तिक मोक्ष का भी मार्ग यही है कि हम समाज की मुक्ति के लिए प्रयास करें।''[2] भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही दर्शनों में अरविंद की पैठ बहुत गहरी थी। उन्हें बुद्धि और विज्ञान की सीमा और असमर्थता का भी पूरा बोध था। उनका मानना था कि विज्ञान की सीमा जहाँ समाप्त होती है वहीं से अध्यात्म की सीमा का आरंभ होता है। अतः आत्मा के अस्तित्व को सिरे से खारिज नहीं किया जा सकता। ठीक इसी तरह शरीर की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। साहित्यकार दिनकर इस विशय में अरविंद के मत की

*एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी–विभाग, श्यामलाल कॉलेज सांध्य, दिल्ली विश्वविद्यालय

ओर संकेत करते हुए लिखते हैं –''इतिहास यह है कि भारत में आत्मा भौतिकता के खिलाफ रही है और पश्चिम में भौतिकता आत्मा से विद्रोह कर रही है। किंतु दोनों प्रवृत्तियों में से किसी ने भी ऐसा दर्शन तैयार नहीं किया जिससे जीवन भी मिलता हो और प्रकाश भी। भोग सत्य का एक छोर है वैराग्य उसका दूसरा छोर है, किंतु संपूर्ण सत्य वह है जो दोनों को अपने भीतर समाहित करता है और फिर दोनों से आगे निकल जाता है।''[3]

अरविंद की दृष्टि में ब्रह्म और जगत् दोनों ही सत्य हैं। शंकराचार्य के 'जगत् मिथ्या' वाले कथन का वे पुरजोर विरोध करते हैं। उनकी दृष्टि में पदार्थ और आत्मा दोनों ही सत्य हैं तथा इनमें से कोई भी मिथ्या नहीं है। द्रव्य अथवा मैटर को अस्वीकार करने वाला दर्शन आत्मवादी तथा आत्मतत्त्व को अस्वीकार करने वाला दर्शन पदार्थवादी है। जड़ और चेतन में फर्क करने के कारण ही दोनों की दृष्टि एकांगी हो जाती है, जोकि अरविंद को पूर्णतः अस्वीकार्य है। उनके अनुसार परमतत्त्व सत्, चित् और आनंद का सम्मिश्रण ही ब्रह्म है। ब्रह्म का मूलतत्त्व सत् है और वही जगत का नियंता है। चित्शक्ति को अरविंद माता कहते हैं। प्रकृति में सक्रिय रहने के कारण यह शक्ति योगमाया के रूप में छिपी रहती है तथा वह तीन रूपों में प्रकट होती है–जीव, सृष्टि और परात्पर। ब्रह्म द्वारा सृष्टि की रचना आनंद के लिए की जाती है। अरविंद के मतानुसार आत्मा और परमात्मा में काफी समानता है। इनमें भिन्नता केवल सत् को लेकर है। परमात्मा 'सत्–चित्–आनंद' रूप है, जबकि आत्मा में सत् तत्त्व को छोड़कर चित और आनंद दोनों ही विद्यमान होते हैं। मानव जीवन का महान् उद्देश्य सत्, चित् और आनंद की प्राप्ति है और यही गीता का भी अभिप्रेत है। इसीलिए अरविंद इस लक्ष्य–प्राप्ति हेतु संसार से वैराग्य की बजाय निष्काम कर्म को सबसे बड़ा मंत्र मानते हैं। कर्म की यह साधना योग द्वारा ही संभाव्य है। द्रव्य एवं भौतिक ज्ञान को तो मनुष्य अपनी इंद्रियों के द्वारा प्राप्त कर सकता है, किंतु आत्मज्ञान को वह अंतःकरण की साधना के बिना नहीं प्राप्त कर सकता। अरविंद के अनुसार सृष्टि के विकास की यात्रा परमतत्त्व की ही विकास–यात्रा है। वे अपने चिंतन में विकास के दो पक्षों का उद्घाटन करते हैं–अवरोहण एवं आरोहण। अवरोहण के विकास–क्रम में सत्, चित, आनंद, अतिमानस, मानस, जीव, प्राण, द्रव्य आदि चरण क्रमशः आते हैं, जबकि आरोहण में यही क्रम ठीक विपरीत दिशा में चलता है।

अरविंद के चिंतन का मूल आधार वेदांत है। वेदांत–दर्शन संसार में प्राचीन काल से ही उपस्थित था, किंतु जड़ में चैतन्य की उपस्थिति मानने वालों का अभाव निरंतर बना हुआ था। इस अभाव की पूर्ति अरविंद के आगमन द्वारा हुई। उन्होंने 'जगत् मिथ्या' और 'मायावाद' के सिद्धांत को सिरे से खारिज़ कर दिया। इतना ही नहीं अरविंद ने डार्विन के सिद्धांत में भी एक कड़ी जोड़ते हुए उसे पूर्ण करने का ऐतिहासिक कार्य किया। उन्होंने सृष्टि–निर्माण के रहस्य को भी सुलझाने का प्रयास किया। उनके अनुसार सृष्टि का निर्माण इसलिए हुआ कि द्रव्य अथवा जड़ के भीतर चेतन पहले से विद्यमान था और वह अपने पूर्णतम विकास को प्राप्त करने का आकांक्षी था। अरविंद के अनुसार एक दिन विज्ञान भी यह स्वीकार करेगा कि सृष्टि का जो परम रहस्य है वह बुद्धि से नहीं जाना जा सकता है। और न ही मनुष्य को अपनी बुद्धि द्वारा संकटों से पूरी तरह निजात मिल सकती है। बुद्धि को अनुपयोगी और असमर्थ मानने वालों में अरविंद अकेले नहीं हैं। पाश्चात्य चिंतकों पॉस्कल, कीरकेगार्द तथा फ्रेंच दार्शनिक हेनरी बर्सो भी इसी विचार को मानने वाले हैं। हेनरी बर्सो ने तो यहाँ तक कहा कि भौतिकी और रसायन शास्त्र के नियम मनुष्य के जीवन को संपूर्णता में पारिभाषित नहीं कर सकते। चेतना इनके नियमों का अतिक्रमण कर जाती है। अरविंद के अनुसार अब विकास की यात्रा चेतना से होती हुई पूर्ण चेतना की ओर उन्मुख है। बुद्धि और विज्ञान का विकास अब तक बहुत हो चुका है। मनुष्य को अब विज्ञान से अधिक अध्यात्म और नैतिकता की जरूरत है, जिससे वह वैज्ञानिक उपलब्धियों को विनाशकारी होने से बचा सके । प्राचीन भारतीय दर्शन में ब्रह्म, जीव, जगत् आदि पर जो स्थापनाएँ प्रकाश में आयीं उनमें एक थी–'सर्व खलु इदं ब्रह्म' की। अर्थात् सृष्टि में जो कुछ भी दृश्य है वह ब्रह्म है। यह विचार सर्वप्रथम 'मुंडकोपनिषद्' में व्यक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त शंकराचार्य ने कहा था कि ब्रह्म तो सत्य है किंतु जगत् मिथ्या है। इस विरोधाभास की समस्या का समाधान भी अरविंद–दर्शन में दिखायी पड़ता है । अरविंद की दृष्टि में सत्य के इन दोनों रूपों में कोई भेद नहीं है। यदि कुछ भेद आभासित होता है तो वह भी बुद्धि के कारण। उनका मानना है कि सारी प्रकृति चेतन है। इसका सबसे आरंभिक रूप वह है जो जड़ के रूप में आभासित होता है, किंतु वह जड़ नहीं होता। इसका उच्चतम् रूप अतिमानसी सोपान है। डार्विन की इस थ्योरी से अरविंद असहमत नहीं हैं कि आदमी बंदर का विकसित रूप है किंतु इसके साथ वे यह जोड़ना नहीं भूलते कि इसके पीछे कोई अदृश्य चेतना अवश्य सक्रिय रही है। अरविंद के ही शब्दों में –''हमें यह मानना ही पड़ेगा कि जो चीज विकसित हुई है वह पहले से ही क्रियाशील या अक्रिय रूप में मूल द्रव्य के भीतर मौजूद थी, भले ही वह प्रच्छन्न रही हो। आत्मा जो शरीर में प्रकट हुई है, वह पहले से ही पुद्गल में विद्यमान थी, उसके कण–कण में व्याप्त थी। इसी प्रकार जीवन और मन भी उसी मैटर में छिपे हुए थे और मन से भी आगे जो शक्तियाँ हैं वे मैटर में छिपी हुई हैं।''[4] उनका मानना है कि मैटर अथवा द्रव्य में जब पहली बार कंपन हुआ होगा तब ऐसा ईश्वर अथवा ब्रह्म की इच्छा से ही हुआ होगा। इसी इच्छा के परिणामस्वरूप द्रव्य के भीतर से जीवन और जीवन से मन प्रकट हुआ होगा। अरविंद को पूरा विश्वास है कि विकास के इस क्रम में मन से अतिमन का भी उदय अवश्य होगा। चूँकि अतिमानस तक की विकासयात्रा मन से

ही आरंभ होगी अतः साधना में सबसे पहले मन को शुद्ध और शांत करना अनिवार्य होगा। अरविंद का 'अतिमानस' ब्रह्मचेतना के बहुत निकट है। यह आध्यात्मिक चेतना का शीर्ष बिंदु है। चेतना के उच्चतम स्तर को अरविंद ने चार चरणों में विभाजित किया है– उच्चतर मन, प्रकाशित मन, संबुद्ध मन और अतिमन।

अरविंद–दर्शन में रूपांतरण के सिद्धांत की बड़ी महत्ता है। वे अपने चिंतन में तीन प्रकार के रूपांतरण की बात करते हैं–चैत्तिक, आध्यात्मिक और अतिमानसिक। उन्होंने अहंकार के त्याग को चैत्तिक तथा ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति को आध्यात्मिक रूपांतरण कहा है। इस कड़ी में अतिमानसिक रूपांतरण सबसे कठिन और दुष्कर है। जब तक मनुष्य में अतिमानस का उदय नहीं होगा, उसके संपूर्ण रूपांतरण की विकास–यात्रा अधूरी रहेगी। अरविंद की दृष्टि में प्रकृति ने मनुष्य को एक सहायक के रूप में बुद्धि प्रदान की थी किंतु अज्ञानतावश वह इसे सर्वस्व समझ बैठा है। इसका परिणाम हमारे समक्ष है। यदि मनुष्य पुनः अपनी मनुष्यता को प्राप्त करना चाहता है तो उसे अतिमानस को अपने भीतर जागृत करना ही होगा तथा अपनी बुद्धि का आँचल छोड़कर उसे आत्मा और चेतना की ओर लौटना होगा। अरविंद वैज्ञानिक विकासवाद के तर्कों से इसलिए भी संतुष्ट नहीं हो पाते क्योंकि उन्हें इस सवाल का जवाब ही नहीं मिलता कि जड़ से चेतन कैसे उत्पन्न हुआ। प्रसिद्ध आलोचक नंदकिशोर आचार्य अरविंद की विकासवादी थ्योरी के संदर्भ में लिखते हैं–''श्री अरविंद यह मानते प्रतीत होते हैं कि किसी भी पदार्थ में से वही चीज विकसित हो सकती है जिसकी संभावना उसमें पहले से मौजूद हो। इसका मतलब यह हुआ कि चेतना पदार्थ में पहले से ही मौजूद है, और जिसे हम विकास कहते हैं वह केवल भौतिक और जैविक विकास नहीं है, वह चेतना का विकास भी है।....श्री अरविंद विकासवादी सिद्धांत की आध्यात्मिक व्याख्या करते हैं लेकिन यह आध्यात्मिकता संन्यासी की आध्यात्मिकता नहीं है, इसमें जीवन अपनी समग्रता में निरंतर मौजूद है।''[5]

अरविंद के 'अतिमानव' अथवा सुपरमैन की कल्पना नीत्से के सुपरमैन की कल्पना से बाद की है। एक बात यहाँ महत्त्वपूर्ण है कि अरविंद का अतिमानव नीत्से के सुपरमैन से एकदम भिन्न है। दिनकर ने दोनों के बीच का अंतर स्पष्ट करते हुए लिखा है–''नीत्से की कल्पना का सुपरमैन श्री अरविंद की कल्पना से उतना ही भिन्न है जितना भिन्न राक्षस देवता से होता है। नीत्से का सुपरमैन वह है जो सबको मार–पीट और दबाकर आगे निकल जाता है। नीत्से ने जिस सुपरमैन का सपना देखा था उसका मूर्त रूप हिटलर में भी दिखायी पड़ा था, किंतु श्री अरविंद का सुपरमैन 'नॉस्टिक बींग' होगा। एक अध्यात्मजीवी मनुष्य होगा जो समाज को दबाकर अपना अनुगामी नहीं बनायेगा, प्रत्युत उसे अपने तेज, अध्यात्म बल और चरित्र से प्रभावित करके रूपांतरित करेगा।'' इसके बावजूद नीत्से और अरविंद के विचारों में कुछ समानता भी है। अरविंद के अनुसार अतिमानस के उदय हेतु ही सारा विकास हुआ है, जबकि नीत्से का मानना है कि मानवता का सारा इतिहास अतिमानव को जन्म देने की तैयारी मात्र है। नीत्से ने अतिमानव के विषय में तो बहुत विचार किया किंतु अतिमानस अथवा सुपरमाइंड का विचार उसे नहीं सूझा। कार्ल मार्क्स की तरह ही अरविंद भी मानव जीवन के स्वर्णिम भविष्य के प्रति आशावादी हैं। किन्तु दोनों की दृष्टि में एक आधारभूत अंतर यह है कि मार्क्स के अनुसार पदार्थ ही नियंता और मूल स्रोत है, जबकि अरविंद की दृष्टि पदार्थ में मौजूद उस चेतना पर अधिक केंद्रित है जिसमें जीवन का पूरा विकास अंतर्निहित है।

समग्रतः अरविंद के विकासवाद और अतिमानस की थ्योरी में भौतिक और आध्यात्मिक दोनों का संतुलन मौजूद है। उनकी दृष्टि में चेतना अतींद्रिय है। अरविंद अतिमानस की स्थिति को योग द्वारा संभाव्य मानते हैं जिसके कारण वे रहस्यवादियों की कतार में खड़े जान पड़ते हैं। आज के वैज्ञानिक युग में उनके सिद्धांतों का बहुस्तरीय परीक्षण अभी बाकी है। आलोचक नंदकिशोर आचार्य अरविंद–दर्शन की स्वीकार्यता पर कुछ प्रश्न अवश्य खड़ा करते हैं किंतु वे इसकी महत्ता को निर्द्वन्द्व रूप में स्वीकार करते हैं–''श्री अरविंद के अपने जीवन और दर्शन में बहुत सी परालौकिक या तांत्रिक प्रवृत्तियों की भी स्वीकृति है, जिनका कोई वैज्ञानिक आधार अभी तक स्पष्ट नहीं है, लेकिन परालौकिक या तांत्रिक को छोड़ देने पर भी श्री अरविंद के दर्शन में बहुत कुछ ऐसा है जो मनुष्य के स्वर्णिम भविष्य के प्रति विश्वास पैदा करता है।''[6] स्पष्ट है कि श्री अरविंद न तो विशुद्ध भौतिकता एवं वैज्ञानिकता के पक्षधर हैं और न ही शुष्क आत्मवाद के। वे मूलतः दोनों बिंदुओं के बीच एक संतुलित सामंजस्य के हिमायती थे। विज्ञान और प्रौद्योगिकी को नकारकर मनुष्य को संन्यासी बनाने की उनकी कोई मंशा नहीं थी। वे आश्वस्त कर देना चाहते थे कि अतिमानस की स्थिति में पहुँचकर न तो मनुष्य के मन का नाश होगा और न ही वह विज्ञान से विमुख होगा। विकास–प्रक्रिया में अतिमानस और वैज्ञानिकता एक साथ अपनी भूमिका निभायेंगे। वे योग को सर्वसाधारण के लिए सर्वथा सुलभ मानते थे, जिसके लिए गृहत्याग कर संन्यासी होने की कोई आवश्यकता नहीं है। 'योगः कर्मसु कौशलम्' अरविंद का आदर्श मंत्र था। उनका मानना था कि संपूर्ण मानवजाति आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा देवत्व को प्राप्त कर सकती है। आलोचक कृश्णदत्त पालीवाल के शब्दों में–'' अरविंद के विचार का सार यह है कि योग साधना का उद्देश्य अतिमानस के लिए उपयुक्त भूमि तैयार करना है। उनका योग समस्त मानवता के लोकमंगल के लिए है, मुक्ति या व्यक्तिगत सिद्धि के लिए नहीं है। मानव कल्याण की भावना में ही भक्ति, ज्ञान, कर्म का सामंजस्य है।''[7] अरविंद की अतिमानसी स्थिति को प्राप्तकर मनुष्य अपने शरीर में ही उन तमाम अलौकिक सुखों का भोग कर सकता है जिसके लिए स्वर्ग की इच्छा की गयी

है। अपनी प्रसिद्ध रचना 'सावित्री' में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि ऐसा एक दिन अवश्य आयेगा जब मनुष्य का रूपांतरण एक अध्यात्मजीवी के रूप में हो जायेगा। अरविंद रूपांतरण को परमब्रह्म का मनुष्य में प्रकटीकरण कहते हैं और इस प्रकार के मानव जीवन को वे दिव्यजीवन कहते हैं। उनका मानना था कि अध्यात्म किसी को जीवन से पलायन नहीं सिखाता, बल्कि वह मनुष्य को कर्मयोगी बनाते हुए देवत्व के आसन पर प्रतिष्ठित करता है। अरविंद की योग–साधना का उद्देश्य अतिमानस के उदय हेतु उपयुक्त जमीन तैयार करना है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उनके अतिमानस की यह अवधारणा व्यक्तिगत सिद्धि के लिए नहीं है बल्कि वह समस्त मानवता के कल्याण के लिए है।

**सन्दर्भ :–**


1. नंदकिशोर आचार्य, आधुनिक विचार, वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर, 1998, पृश्ठ–100।
2. संपादक–नंदकिशोर नवल, दिनकर रचनावली–8, लोकभारती प्रकाशन, पृश्ठ–308।
3. वही, पृश्ठ–312 ।
4. वही, पृश्ठ–318 ।
5. वही, पृश्ठ–330 ।
6. नंदकिशोर आचार्य, आधुनिक विचार, वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर, 1998, पृश्ठ–104।
7. हिंदी साहित्य ज्ञानकोश–1, भारतीय भाशा परिशद् कोलकाता, 2000, पृश्ठ–273।


❐❐❐